Chapter दस

यक्षों के साथ ध्रुव महाराज का युद्ध

मैत्रेय उवाच
प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ।
उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ऋषि ने कहा; प्रजापतेः—प्रजापति की; दुहितरम्—पुत्री; शिशुमारस्य—शिशुमार की; वै—निश्चय ही; ध्रुवः—ध्रुव महाराज; उपयेमे—ब्याह किया; भ्रमिम्—भ्रमि; नाम—नामक; तत्-सुतौ—उसके दो पुत्र; कल्प—कल्प; वत्सरौ—तथा वत्सर।

मैत्रेय ऋषि ने कहा : हे विदुर, तत्पश्चात् ध्रुव महाराज ने प्रजापति शिशुमार की पुत्री के साथ विवाह कर लिया जिसका नाम भ्रमि था। उसके कल्प तथा वत्सर नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि अपने पिता के सिंहासन पर पदारूढ़ होने तथा आत्म-साक्षात्कार हेतु उनके वन चले जाने के बाद ही ध्रुव महाराज ने विवाह किया। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि उत्तानपाद अपने पुत्र के प्रति अत्यन्त वत्सल थे और चूँकि हर पिता का कर्तव्य है कि वह जल्दी से जल्दी अपने पुत्रों और पुत्रियों को ब्याह दे, तो फिर उन्होंने घर छोड़ने के पूर्व अपने पुत्र का विवाह क्यों नहीं किया? इसका उत्तर यही है कि महाराज उत्तानपाद *राजर्षि* थे। यद्यपि वे राजनीतिक कार्यों तथा सत्ता की व्यवस्था के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त थे तो भी वे आत्म-साक्षात्कार के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। अतः ज्योंही उनके पुत्र ध्रुव महाराज शासन का भार सँभालने के योग्य हो गये, उन्होंने घर छोड़ दिया, ठीक वैसे ही जैसे उनके पुत्र ने पाँच वर्ष की ही अवस्था में आत्म-साक्षात्कार हेतु बिना किसी भय के गृहत्याग कर दिया था। ऐसे उदाहरण विरले ही हैं जहाँ अन्य समस्त कार्यों के ऊपर आत्म-बोध पर अधिक बल दिया गया हो। महाराज उत्तानपाद यह भलीभाँति जानते थे कि अपने पुत्र ध्रुव महाराज का ब्याह करना उतना महत्त्वपूर्ण न था कि वन जाकर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने पर वे इसे प्राथमिकता देते।

इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ।
पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

इलायाम्—अपनी पत्नी इला को; अपि—भी; भार्यायाम्—अपनी पत्नी को; वायोः—वायुदेव की; पुत्र्याम्—पुत्री को; महा-बलः—शक्तिशाली ध्रुव महाराज; पुत्रम्—पुत्र; उत्कल—उत्कल; नामानम्—नाम के; योषित्—स्त्री; रत्नम्—रत्न (श्रेष्ठ); अजीजनत्—उत्पन्न किया।

अत्यन्त शक्तिशाली ध्रुव महाराज की एक दूसरी पत्नी थी, जिसका नाम इला था और वह वायुदेव की पुत्री थी। उससे उन्हें एक अत्यन्त सुन्दर कन्या तथा उत्कल नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा ।
हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्मातास्य गतिं गता ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

उत्तमः—उत्तम; तु—लेकिन; अकृत—बिना; उद्वाहः—ब्याह; मृगयायाम्—आखेट करने में; बलीयसा—अत्यन्त बलशाली; हतः—मारा गया; पुण्य-जनेन—एक यक्ष द्वारा; अद्रौ—हिमालय पर्वत पर; तत्—उसकी; माता—माता (सुरुचि); अस्य—अपने पुत्र को; गतिम्—पथ; गता—अनुसरण किया।

ध्रुव महाराज का छोटा भाई उत्तम, जो अभी तक अनब्याहा था, एक बार आखेट करने गया और हिमालय पर्वत में एक शक्तिशाली यक्ष द्वारा मार डाला गया। उसकी माता सुरुचि ने भी अपने पुत्र के पथ का अनुसरण किया (अर्थात् मर गई)।

ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः ।
जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ध्रुवः—ध्रुव महाराज; भ्रातृ-वधम्—अपने भाई की मृत्यु का; श्रुत्वा—समाचार सुनकर; कोप—क्रोध; अमर्ष—प्रतिशोध; शुचा—विलाप से; अर्पितः—पूरित होकर; जैत्रम्—विजयी; स्यन्दनम्—रथ पर; आस्थाय—चढ़ कर; गतः—गया; पुण्य-जन-आलयम्—यक्षों की पुरी में।

जब ध्रुव महाराज ने यक्षों द्वारा हिमालय पर्वत में अपने भाई उत्तम के वध का समाचार सुना तो वे शोक तथा क्रोध से अभिभूत हो गये। वे रथ पर सवार हुए और यक्षों की पुरी अलकापुरी पर विजय करने के लिए निकल पड़े।

तात्पर्य : ध्रुव महाराज का क्रुद्ध होना, शोक से अभिभूत होना तथा शत्रुओं से ईर्ष्या करना—ये सारे कार्य एक भक्त के पद के प्रतिकूल नहीं थे। यह भ्रान्त धारणा है कि भक्त को क्रोध, ईर्ष्या या शोक से अभिभूत नहीं होना चाहिए। ध्रुव महाराज राजा थे, अतः जब उनके भाई को अकारण मार दिया गया

तो उनका धर्म था कि हिमालय के यक्षों से वे बदला लेते।

गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम् ।
ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसङ्कुलाम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; उदीचीम्—उत्तरी; दिशम्—दिशा; राजा—राजा ध्रुव ने; रुद्र-अनुचर—रुद्र अर्थात् शिव के अनुयायियों द्वारा; सेविताम्—बसी हुई; ददर्श—देखा; हिमवत्—हिमालय की; द्रोण्याम्—घाटी में; पुरीम्—नगरी; गुह्यक—प्रेत लोगों से; सङ्कुलाम्—पूर्ण।

ध्रुव महाराज हिमालय प्रखण्ड की उत्तरी दिशा की ओर गये। उन्होंने एक घाटी में एक नगरी देखी जो शिव के अनुचर भूत-प्रेतों से भरी पड़ी थी।

तात्पर्य : इस श्लोक में बताया गया है कि यक्ष बहुत कुछ शिव के भक्त हैं। इस तरह यक्षों को तिब्बती जन-जाति की तरह हिमालय की आदिम जाति माना जा सकता है।

दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् ।
येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

दध्मौ—बजाया; शङ्खम्—शंख; बृहत्-बाहुः—शक्तिशाली भुजाओं वाला; खम्—आकाश; दिशः च—तथा सभी दिशाएँ; अनुनादयन्—गूँजते हुए; येन—जिससे; उद्विग्न-दृशः—अत्यन्त चिन्तित दिखीं; क्षत्तः—हे विदुर; उपदेव्यः—यक्षों की पत्नियाँ; अत्रसन्—भयभीत हो गईं; भृशम्—अत्यधिक।

मैत्रेय ने आगे कहा : हे विदुर, जैसे ही ध्रुव महाराज अलकापुरी पहुँचे, उन्होंने तुरन्त अपना शंख बजाया जिसकी ध्वनि सम्पूर्ण आकाश तथा प्रत्येक दिशा में गूँजने लगी। यक्षों की पत्नियाँ अत्यन्त भयभीत हो उठीं। उनके नेत्रों से प्रकट हो रहा था कि वे चिन्ता से परिपूर्ण थीं।

ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ।
असहन्तस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; निष्क्रम्य—बाहर आकर; बलिनः—अत्यन्त बलशाली; उपदेव—कुवेर के; महा-भटाः—बड़े बड़े सैनिक; असहन्तः—असहनीय; तत्—शंख की; निनादम्—ध्वनि; अभिपेतुः—आक्रमण किया; उदायुधाः—विभिन्न आयुधों से सज्जित।

हे वीर विदुर, ध्रुव महाराज के शंख की गूँजती ध्वनि को सहन न कर सकने के कारण यक्षों के महा-शक्तिशाली सैनिक अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर अपनी नगरी से बाहर निकल आये

और उन्होंने ध्रुव पर धावा बोल दिया।

स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः ।
एकैकं युगपत्सर्वानहन्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (ध्रुव महाराज); तान्—उन सबों को; आपततः—अपने ऊपर टूटते हुए; वीरः—वीर; उग्र-धन्वा—शक्तिशाली धनुर्धर; महा-रथः—जो अनेक रथों से लड़ सके; एक-एकम्—एक-एक करके; युगपत्—एकसाथ, एक समय; सर्वान्—उन सबों को; अहन्—मार डाला; बाणैः—बाणों से; त्रिभिः त्रिभिः—तीन तीन करके।

ध्रुव महाराज, जो महारथी तथा निश्चय ही महान् धनुर्धर भी थे, तुरन्त ही एकसाथ तीन-तीन बाण छोड़ करके उन्हें मारने लगे।

ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ।
मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; वै—निश्चय ही; ललाट-लग्नैः—उनके सिरों से सट कर; तैः—उनके द्वारा; इषुभिः—बाण; सर्वे—सभी; एव—निश्चय ही; हि—निस्सन्देह; मत्वा—सोचकर; निरस्तम्—पराजित; आत्मानम्—अपने आप; आशंसन्—प्रशंसित; कर्म—कर्म; तस्य—उसका; तत्—वह।

जब यक्ष वीरों ने देखा कि उनके शिरों पर ध्रुव महाराज द्वारा बाण-वर्षा की जा रही है, तो उन्हें अपनी विषम स्थिति का पता चला और उन्होंने यह समझ लिया कि उनकी हार निश्चित है। किन्तु वीर होने के नाते उन्होंने ध्रुव के कार्य की सराहना की।

तात्पर्य : इस श्लोक में युद्ध के समय क्रीड़ापूर्ण प्रवृत्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यक्षों पर घनघोर आक्रमण हो रहा था। ध्रुव महाराज उनके शत्रु थे फिर भी वे ध्रुव के आश्चर्यजनक वीरतापूर्ण कार्यों को देखकर उन पर अत्यधिक प्रसन्न थे। शत्रु के शौर्य की निसंस्कोच प्रशंसा वास्तविक क्षत्रिय-प्रवृत्ति का लक्षण है।

तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ।
शरैरविध्यन्युगपद्द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ते—यक्षगण; अपि—भी; च—तथा; अमुम्—ध्रुव पर; अमृष्यन्तः—असह्य होने पर; पाद-स्पर्शम्—पाँव से छुये जाकर; इव—सदृश; उरगाः—सर्प; शरैः—बाणों से; अविध्यन्—प्रहार किया जाकर; युगपत्—उसी समय; द्वि-गुणम्—दो गुना; प्रचिकीर्षवः—प्रतिशोध की भावना से।

जिस प्रकार सर्प किसी के पाँव द्वारा कुचले जाने को सहन नहीं कर पाते, उसी प्रकार यक्ष भी ध्रुव महाराज के आश्चर्यजनक पराक्रम को न सह सकने के कारण, उन पर एक साथ उनसे दुगुने बाण—अर्थात् प्रत्येक सैनिक छह-छह बाण—छोड़ने लगे और इस प्रकार उन्होंने अपनी शूरवीरता का बड़ी बहादुरी से प्रदर्शन किया।

ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ।
शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ ११ ॥
अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ।
इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानां त्रयोदश ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तपश्चात्; परिघ—लोहे के गदे; निस्त्रिंशैः—तथा तलवारों से; प्रास-शूल—त्रिशूल से; परश्वधैः—तथा बरछों से; शक्ति—तथा शक्ति से; ऋष्टिभिः—तथा भालों से; भुशुण्डीभिः—भुशुण्डी आयुध से; चित्र-वाजैः—विविध प्रकार के पंखों वाले; शरैः—बाणों से; अपि—भी; अभ्यवर्षन्—ध्रुव पर वर्षा की; प्रकुपिताः—अत्यन्त क्रुद्ध; स-रथम्—उनके रथ समेत; सह-सारथिम्—उनके रथवान सहित; इच्छन्तः—चाहते हुए; तत्—ध्रुव के कार्य; प्रतीकर्तुम्—बदला लेने के लिए; अयुतानाम्—दस हजारों का; त्रयोदश—तेरह।

यक्ष सैनिकों की संख्या एक लाख तीस हजार थी; वे सभी अत्यन्त क्रुद्ध थे और ध्रुव महाराज के आश्चर्यजनक कार्यों को विफल करने की इच्छा लिए थे। उन्होंने पूरी शक्ति से महाराज ध्रुव तथा उनके रथ तथा सारथी पर विभिन्न प्रकार के पंखदार बाणों, परिघों, निस्त्रिंशों (तलवारों), प्रासशूलों (त्रिशूलों), परश्वधों (बरछों), शक्तियों, ऋष्टियों (भालों) तथा भृशुण्डियों से वर्षा की।

औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ।
न एवादृश्यताच्छन्न आसारेण यथा गिरिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

औत्तानपादिः—ध्रुव महाराज; सः—वह; तदा—उस समय; शस्त्र-वर्षेण—शस्त्रों की वर्षा से; भूरिणा—निरन्तर; न—नहीं; एव—निश्चय ही; अदृश्यत—दिखाई पड़ता था; आच्छन्नः—ढका हुआ; आसारेण—निरन्तर वर्षा से; यथा—जिस प्रकार; गिरिः—पर्वत।

ध्रुव महाराज आयुधों की निरन्तर वर्षा से पूरी तरह ढक गये मानो निरन्तर जल-वृष्टि से कोई पर्वत ढक गया हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इंगित किया है कि यद्यपि ध्रुव महाराज शत्रुओं की निरन्तर

बाण-वर्षा से ढक गये थे, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं था कि वे युद्ध हार चुके थे। यहाँ पर निरन्तर वर्षा से आच्छादित पर्वत का उदाहरण उपयुक्त है, क्योंकि निरन्तर वर्षा से पर्वत के ढक जाने पर उसकी सारी गन्दगी धुल जाती है। इसी प्रकार शत्रुओं की निरन्तर बाण-वर्षा से ध्रुव महाराज में उन्हें पराजित करने की नवीन शक्ति आ गई। दूसरे शब्दों में, उनमें जो भी अपूर्णता थी वह सारी की सारी धुल गई।

हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ।
हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥ १४॥

शब्दार्थ

हाहा-कारः—हाहाकार शब्द, निराशा की ध्वनि; तदा—उस समय; एव—निश्चय ही; आसीत्—प्रकट था; सिद्धानाम्—सिद्धलोक के समस्त वासियों का; दिवि—आकाश में; पश्यताम्—युद्ध को देखते हुए; हतः—मारा गया; अयम्—यह; मानवः—मनु के पौत्र का; सूर्यः—सूर्य; मग्नः—डूबा हुआ; पुण्य-जन—यक्षों के; अर्णवे—समुद्र में।

स्वर्गलोकवासी सभी सिद्धजन आकाश से युद्ध देख रहे थे और जब उन्होंने देखा कि ध्रुव महाराज शत्रु की निरन्तर बाण-वर्षा से ढक गये हैं, तो वे हाहाकार करने लगे, ''मनु के पौत्र ध्रुव हार गये, हार गये।'' वे चिल्ला रहे थे कि ध्रुव महाराज तो सूर्य के समान हैं और इस समय वे यक्षों के समुद्र में डूब गए हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में *मानव* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतः यह शब्द 'मनुष्य' के लिए आता है। यहाँ पर ध्रुव महाराज को भी मनुष्य कहा गया है। न केवल ध्रुव महाराज, वरन् सारा मानव समाज, मनु का वंशज है। वैदिक साहित्य के अनुसार मनु विधि के प्रदाता हैं। आज भी भारत के सारे हिन्दू मनु द्वारा प्रदत्त विधि (नियमों) का पालन करते हैं। अतः मानव समाज का प्रत्येक व्यक्ति मानव अर्थात् मनु का वंशज है। किन्तु ध्रुव महाराज विशिष्ट मानव हैं, क्योंकि वे महान् भक्त हैं।

सिद्धलोक के वासी जो विमानों के बिना आकाश में उड़ सकते हैं, युद्ध में ध्रुव महाराज के कल्याण की कामना के इच्छुक थे। अतः श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं कि न केवल भक्त परमेश्वर द्वारा सुरक्षित रहता है, वरन् समस्त देवता, यहाँ तक कि सामान्य मनुष्य भी, उसकी सुरक्षा के प्रति उत्सुक होते हैं। यहाँ पर ध्रुव महाराज को यक्षों के समुद्र में डूबा हुआ दिखाया गया है, यह भी सार्थक है। जब सूर्य क्षितिज में छिप जाता है, तो लगता है कि वह समुद्र में डूबा गया, किन्तु वास्तव में सूर्य इससे विपत्ति में नहीं फँसता। इसी प्रकार ध्रुव महाराज यक्षों के समुद्र में डूबे हुए प्रतीत हुए, किन्तु उन्हें कोई

कष्ट न था। जिस प्रकार रात बीतने पर सूर्य पुन: उदय होता है, उसी प्रकार भले ही ध्रुव महाराज कष्ट में रहे हों, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि वे परास्त हो चुके थे, क्योंकि आखिरकार यह युद्ध था और किसी भी युद्ध में चित-पट तो होती ही है।

नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ।
उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नदत्सु—निनाद करते अथवा गरजते हुए; यातुधानेषु—प्रेत रूप यक्ष; जय-काशिषु—विजय घोष करते हुए; अथो—तब; मृधे—युद्ध में; उदतिष्ठत्—प्रकट हुआ; रथ:—रथ; तस्य—ध्रुव महाराज का; नीहारात्—कुहरे; इव—सदृश; भास्करः—सूर्य।

क्षणिक विजय जैसी स्थिति देखकर यक्षों ने घोषित कर दिया कि उन्होंने ध्रुव महाराज पर विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु तभी ध्रुव का रथ एकाएक प्रकट हुआ, जैसे कुहरे को भेदकर सूर्य सहसा प्रकट हो जाता है।

तात्पर्य : यहाँ पर ध्रुव महाराज की उपमा सूर्य से और यक्षों के विशाल दल की तुलना कुहरे से दी गई है। सूर्य की तुलना में कुहरा नगण्य होता है। भले ही सूर्य कभी-कभी कुहरे से ढका दिखाई दे, किन्तु वस्तुत: सूर्य को किसी प्रकार ढका नहीं जा सकता। हमारे नेत्र भले ही बादलों से ढक जाएं किन्तु सूर्य कभी नहीं ढका जा सकता। सूर्य के साथ इस प्रकार की उपमा से ध्रुव महाराज की सार्वभौम महानता की पुष्टि होती है।

धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् ।
अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

धनु:—उसका धनुष; विस्फूर्जयन्—टंकार, फूत्कार; दिव्यम्—आश्चर्यमय; द्विषताम्—शत्रुओं का; खेदम्—विषाद; उद्वहन्—उत्पन्न करते हुए; अस्त्र-ओघम्—विभिन्न प्रकार के हथियार; व्यधमत्—तितर-बितर कर दिया; बाणै:—बाणों से; घन—बादलों का; अनीकम्—दल; इव—सदृश; अनिल:—वायु।

ध्रुव महाराज के धनुष-बाण टंकार तथा फूत्कार करने लगे जिससे उनके शत्रुओं के हृदय में त्रास उत्पन्न होने लगा। वे निरन्तर बाण बरसाने लगे, जिससे सभी के विभिन्न हथियार वैसे ही तितर-बितर हो गये, जिस प्रकार प्रबल वायु से आकाश में एकत्र बादल बिखर जाते हैं।

तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् ।
कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७॥

शब्दार्थ

तस्य—ध्रुव के; ते—वे बाण; चाप—धनुष से; निर्मुक्ता:—छूटे हुए; भित्त्वा—भेदकर; वर्माणि—कवचों को; रक्षसाम्—असुरों के; कायान्—शरीर में; आविविशु:—घुस गये; तिग्मा:—प्रखर; गिरीन्—पर्वत; अशनय:—वज्र; यथा—जिस प्रकार।

ध्रुव महाराज के धनुष से छूटे हुए प्रखर बाण शत्रुओं के कवचों तथा शरीरों में घुसने लगे, मानो स्वर्ग के राजा द्वारा छोड़ा गया वज्र हो, जो पर्वतों के शरीरों को छिन्न-भिन्न कर देता है।

भल्लै: सञ्छिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलै: ।
ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभि: ॥ १८॥
हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनै: ।
आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहरा: ॥ १९॥

शब्दार्थ

भल्लै:—बाणों से; सञ्छिद्यमानानाम्—खण्ड-खण्ड हुए यक्षों के; शिरोभि:—सिरों से; चारु—सुन्दर; कुण्डलै:—कान के कुण्डलों से; ऊरुभि:—जाँघों से; हेम-तालाभै:—सुनहले ताड़ वृक्षों के समान; दोर्भि:—भुजाओं से; वलय-वल्गुभि:—सुन्दर कंकणों से; हार—हारों से; केयूर—बाजूबन्द; मुकुटै:—तथा मुकुटों; उष्णीषै:—पगड़ियों से; च—भी; महा-धनै:—बहुमूल्य; आस्तृता:—आच्छादित; ता:—वे; रण-भुव:—रणभूमि; रेजु:—चमकने लगे; वीर—वीरों के; मन:-हरा:—मनों को हरनेवाले।

महर्षि मैत्रेय ने आगे कहा : हे विदुर, ध्रुव महाराज के बाणों से जो सिर छिन्न-भिन्न हुए थे वे सुन्दर कुण्डलों तथा पागों से अच्छी तरह से अलंकृत थे। उन शरीरों के पाँव सुनहरे ताड़ के वृक्षों के समान सुन्दर थे; उनकी भुजाएं सुनहरे कंकणों तथा बाजूबन्दों से सुसज्जित थीं और उनके सिरों पर बहुमूल्य सुनहरे मुकुट थे। युद्ध भूमि में बिखरे हुए ये आभूषण अत्यन्त आकर्षक लग रहे थे और किसी भी वीर के मन को मोह सकते थे।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि उन दिनों सैनिक सोने के आभूषण पहन कर तथा कवच और पगड़ी पहन कर युद्ध करने जाते थे और जब वे मरते थे तो ये सारी वस्तुएँ शत्रु-सेना द्वारा ले ली जाती थीं। नानाविध स्वर्णाभूषित वर्दियों के साथ युद्धभूमि में मरना वीरों के लिए सचमुच सुनहरा अवसर होता था।

हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्
रक्षोगणा: क्षत्रियवर्यसायकै: ।

प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवु-
मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥ २० ॥

शब्दार्थ

हत-अवशिष्टाः—मरने से बचे हुए; इतरे—अन्य; रण-अजिरात्—युद्धभूमि से; रक्षः-गणाः—यक्ष गण; क्षत्रिय-वर्य—क्षत्रियों अथवा सैनिकों में श्रेष्ठ; सायकैः—बाणों से; प्रायः—प्रायः; विवृक्ण—खण्ड-खण्ड हुए; अवयवाः—शरीर के अंग; विदुद्रुवुः—भग गये; मृगेन्द्र—सिंह द्वारा; विक्रीडित—हार कर; यूथपाः—हाथी; इव—सदृश।

जो यक्ष किसी प्रकार जीवित बच गए, उनके अंग-प्रत्यंग परम वीर ध्रुव महाराज के बाणों से कट कर खण्ड-खण्ड हो गये। वे युद्ध-भूमि छोड़ कर उसी तरह भागने लगे जैसे कि सिंह द्वारा पराजित होने पर हाथी भागते हैं।

अपश्यमानः स तदाततायिनं
महामृधे कञ्चन मानवोत्तमः ।
पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां
न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अपश्यमानः—न देखते हुए; सः—ध्रुव; तदा—उस समय; आततायिनम्—सशस्त्र शत्रु सैनिक को; महा-मृधे—उस महायुद्ध में; कञ्चन—कोई; मानव-उत्तमः—नर-श्रेष्ठ; पुरीम्—पुरी, नगरी; दिदृक्षन्—देखने की इच्छा से; अपि—यद्यपि; न आविशत्—प्रवेश नहीं किया; द्विषाम्—शत्रुओं का; न—नहीं; मायिनाम्—मायावी का; वेद—जानता है; चिकीर्षितम्—योजनाएँ; जनः—कोई भी।

मानवों में श्रेष्ठ ध्रुव महाराज ने देखा कि उस विशाल युद्धभूमि में एक भी सशस्त्र शत्रु सैनिक शेष नहीं रहा। तब उनकी इच्छा अलकापुरी देखने को हुई। किन्तु उन्होंने मन में सोचा, ''यक्षों की मायावी योजनाओं को कोई नहीं जानता।''

इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं
यत्तः परेषां प्रतियोगशङ्कितः ।
शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं
नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ब्रुवन्—बातें करते; चित्र-रथः—ध्रुव महाराज, जिनका रथ अत्यन्त सुन्दर था; स्व-सारथिम्—अपने सारथी से; यत्तः—सावधान; परेषाम्—अपने शत्रुओं से; प्रतियोग—जवाबी हमला; शङ्कितः—सशंकित; शुश्राव—सुना; शब्दम्—शब्द; जलधेः—समुद्र से; इव—मानो; ईरितम्—प्रतिध्वनित; नभस्वतः—वायु के कारण; दिक्षु—सभी दिशाओं में; रजः—धूल; अनु—तब; अदृश्यत—दिखाई पड़ी।

जब ध्रुव महाराज अपने मायावी शत्रुओं से सशंकित होकर अपने सारथी से बातें कर रहे थे

तो उन्हें प्रचण्ड ध्वनि सुनाई पड़ी, मानो सम्पूर्ण समुद्र उमड़ आया हो। उन्होंने देखा कि आकाश से उन पर चारों ओर से धूल भरी आँधी आ रही है।

क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ।
विस्फुरत्तडिता दिक्षु त्रासयत्स्तनयित्नुना ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

क्षणेन—एक क्षण में; आच्छादितम्—ढका हुआ; व्योम—आकाश; घन—घने बादलों का; अनीकेन—समूह से; सर्वतः—सभी दिशाओं में; विस्फुरत्—चमकती; तडिता—बिजली से; दिक्षु—सभी दिशाओं में; त्रासयत्—भयभीत करता; स्तनयित्नुना—गर्जन से।

एक क्षण में सारा आकाश घने बादलों से छा गया और घोर गर्जन सुनाई पड़ने लगा। बिजली चमकने लगी और भीषण वर्षा होने लगी।

ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ।
निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ववृषुः—वर्षा होने लगी; रुधिर—रक्त की; ओघ—बाढ़; असृक्—श्लेष्मा; पूय—पीब; विट्—विष्ठा; मूत्र—मूत्र; मेदसः—तथा मज्जा; निपेतुः—गिरने लगे; गगनात्—आकाश से; अस्य—ध्रुव के; कबन्धानि—धड़; अग्रतः—समक्ष; अनघ—हे निष्पाप विदुर।

हे निष्पाप विदुर, उस वर्षा में ध्रुव महाराज के समक्ष भारी मात्रा में रक्त, श्लेष्मा (कफ), पीब, मल, मूत्र तथा मज्जा और आकाश से शरीरों के धड़ (रुंड) गिर रहे थे।

ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् ।
गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; खे—आकाश में; अदृश्यत—दिखाई पड़ा; गिरिः—पर्वत; निपेतुः—गिरा हुआ; सर्वतः-दिशम्—सभी दिशाओं से; गदा—गदा; परिघ—परिघ; निस्त्रिंश—तलवारें; मुसलाः—मूसल; स-अश्म—पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़ों की; वर्षिणः—वर्षा के साथ।

फिर आकाश में एक विशाल पर्वत दिखाई पड़ा और चारों ओर से बर्छे, गदा, तलवारें, परिघ तथा पत्थरों के विशाल खण्डों की वर्षा के साथ उपलवृष्टि होने लगी।

अहयोऽशनिनिःश्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाक्षिभिः ।

अभ्यधावन्गजा मत्ता: सिंहव्याघ्राश्च यूथश: ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अहय:—साँप; अशनि—वज्र; नि:श्वासा:—साँस लेते हुए; वमन्त:—वमन करते; अग्निम्—अग्नि; रुषा-अक्षिभि:—क्रोधित नेत्रों से; अभ्यधावन्—आगे आये; गजा:—हाथी; मत्ता:—उन्मत्त; सिंह—शेर; व्याघ्रा:—बाघ; च—भी; यूथश:—समूह के समूह।

ध्रुव महाराज ने देखा कि रोषपूर्ण आँखों वाले बहुत से सर्प अग्नि उगलते हुए उनको निगलने के लिए आगे लपक रहे हैं। साथ ही मत्त हाथियों, सिंहों तथा बाघों के समूह भी चले आ रहे हैं।

समुद्र ऊर्मिभिर्भीम: प्लावयन्सर्वतो भुवम् ।
आससाद महाह्राद: कल्पान्त इव भीषण: ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

समुद्र:—समुद्र; ऊर्मिभि:—लहरों से; भीम:—भयानक; प्लावयन्—डुबाता हुआ; सर्वत:—सभी दिशाओं से; भुवम्—पृथ्वी को; आससाद—आगे आ रहा था; महा-ह्राद:—भीषण शोर करता; कल्प-अन्ते—कल्प के अन्त में (प्रलय); इव—सदृश; भीषण:—भयावना।

फिर, समस्त जगत के लिए प्रलय-काल के समान भयानक समुद्र अपनी उत्ताल तरंगों तथा भीषण गर्जना के साथ उनके समक्ष आ पहुँचा।

एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ।
ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययासुरा: ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधानि—इस प्रकार के (कौतुक); अनेकानि—बहुत से; त्रासनानि—डरावने; अमनस्विनाम्—अल्पज्ञों के लिए; ससृजु:—उत्पन्न किया; तिग्म-गतय:—क्रूर स्वभाव वाले; आसुर्या—आसुरी; मायया—माया से; असुरा:—असुर गण।

असुर-यक्ष स्वभाव से अत्यन्त क्रूर होते हैं और अपनी आसुरी माया से वे अल्पज्ञानियों को डराने वाले अनेक कौतुक कर सकते थे।

ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ।
निशम्य तस्य मुनय: शमाशंसन्समागता: ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ध्रुवे—ध्रुव के विरुद्ध; प्रयुक्ताम्—प्रयुक्त; असुरै:—असुरों द्वारा; ताम्—उस; मायाम्—मायावी शक्ति; अति-दुस्तराम्—अत्यन्त भयावनी; निशम्य—सुनकर; तस्य—उसका; मुनय:—बड़े-बड़े मुनि; शम्—कल्याण; आशंसन्—प्रोत्साहित करते हुए; समागता:—एकत्र हो गये।

जब मुनियों ने सुना कि ध्रुव महाराज असुरों के मायावी करतबों से पराजित हो गये हैं, तो वे उनकी मंगल-कामना के लिए तुरन्त वहाँ एकत्र हो गये।

मुनय ऊचुः
औत्तानपाद भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ।
यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

मुनयः ऊचुः—मुनियों ने कहा; औत्तानपाद—हे उत्तानपाद के पुत्र; भगवान्—भगवान्; तव—तुम्हारा; शार्ङ्ग-धन्वा—शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करनेवाला; देवः—देव, भगवान; क्षिणोतु—वध कर दे; अवनत—शरणागतों के; आर्ति—क्लेश; हरः—हरनेवाला; विपक्षान्—विपक्षियों, शत्रुओं; यत्—जिसका; नामधेयम्—पवित्र नाम; अभिधाय—लेकर; निशम्य—सुनकर; च—भी; अद्धा—शीघ्र ही; लोकः—लोग; अञ्जसा—पूर्णतः; तरति—पार करते हैं; दुस्तरम्—दुर्लंघ्य; अङ्ग—हे ध्रुव; मृत्युम्—मृत्यु को।

सभी मुनियों ने कहा : हे उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव, अपने भक्तों के क्लेशों को हरनेवाले शार्ङ्गधन्वा भगवान् आपके भयानक शत्रुओं का संहार करें। भगवान् का पवित्र नाम भगवान् के ही समान शक्तिमान है, अतः भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन तथा श्रवण-मात्र से अनेक लोग भयानक मृत्यु से रक्षा पा सकते हैं। इस प्रकार भक्त बच जाता है।

तात्पर्य : जब ध्रुव महाराज यक्षों के मायावी करतबों से मन में अत्यन्त विक्षुब्ध थे, उसी समय बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनके पास गये। भगवान् द्वारा भक्त की सदा से रक्षा होती आई है। उन्हीं की प्रेरणा से वे ध्रुव महाराज को प्रोत्साहित करने और आश्वस्त करने आये थे कि उन्हें कोई भय नहीं है, क्योंकि वे पूर्णतः भगवान् के शरणागत हैं। यदि भगवत्कृपा से कोई भक्त मृत्यु के समय केवल उनके पवित्र नाम हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे नामक *महामंत्र* का जप करता है, तो वह भवसागर से पार होकर वैकुण्ठ में प्रवेश करता है। उसे जन्म-मृत्यु के आवागमन में नहीं फँसना होता। चूँकि भगवान् के पवित्र नाम के जप से मृत्यु-सागर को पार किया जा सकता है, अतः ध्रुव महाराज निश्चित रूप से यक्षों की माया को जिस से उस समय उनका मन विक्षिप्त हो रहा था, पार कर सकने में समर्थ हुए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत ''यक्षों के साथ ध्रुव महाराज का युद्ध'' नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।